''गीति काव्य परम्परा में संत कवियों का अवदान''

डॉ0 मंजू कुमारी*

गीति काव्य का उद्‌भव मानव सभ्यता के प्रारम्भिक युग में ही हो गया था, किन्तु भारतीय साहित्य में गीतिकाव्य का उल्लेख सर्वप्रथम कालिदास कृत 'मालिवकाग्निमित्रम्' में मिलता है। हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक काल में गीतिकाव्य उपेक्षित था, इसका प्रचलन केवल जनसाधारण में था, परन्तु सिद्ध कवियों ने चर्यागीत के माध्यम से गीतिकाव्य को नया रूप प्रदान किया। संतों के उस गीत काव्य में सभी तत्व भी उपलब्ध थे वैयक्तिकता संगीतात्मकता, भाषा की कोमलता, संक्षिप्तता आदि।

गीति काव्य का विकास संत कवियों द्वारा हुआ। क्षेमेन्द्र, जयदेव ने इस मार्ग को अपनाया, आगे चलकर विद्यापति ने इस परम्परा को नया रूप प्रदान किया। यह कहना गलत न होगा कि विद्यापति के काव्यों में गीतिकाव्य की सभी विशेषताएं मिलती हैं। उन्हीं का अनुकरण कर उस काल के संतों जैसे– चन्द्रकला, दशावधान ठाकुर, भीष्मकवि लोचन, गोविन्ददास, भूपतीन्द्र, बुद्धिलाल, रमापति आदि ने पदों की रचना की।

संत कवियों की गीतिकाव्य धारा व्यवधानों के बीच स्वच्छन्द गति से बहती रही। कबीर, रामानंद, रैदास, दादू, सुन्दरदास आदि संतों में अपने उपदेशों का प्रचार संगीत के कोमल स्वरों में बिखेरा जो सरसता एवं मधुरता का संचार करते हुए अपनी बात करते हैं :– **''कहै कबीर मैं कहु न कीन्हा**
सखी! सुहाग राम मोहि दीन्हा।''[1]

कबीर की उपदेशात्मक उक्तियाँ संगीतात्मकता से ओत–प्रोत है जो पाठक के कल्पना चक्षुओं को खोल देता है। कहते हैं कि नामदेव अपनी यात्रा के दौरान भजन गाया करते थे। उसी प्रकार गुरू नानकदेव व दादूदयाल देश भ्रमण करते हुए अपने काव्य को लयात्मक रूप प्रदान कर वाद्ययन्त्र के सहारे अपने विचारों का प्रचार करते थे।

''कागा करंग ढडोलिया सगला षाइआ मासु
दुई नैना गति हुहउ, पिव देखन की आस।''[2]

संतों का अनुभव, उनकी तल्लीनता उनके पदों में अभिव्यक्त होती है। भाषा में भावगार्म्भीयता, विचारों में स्वच्छन्ता उन्हें जन्मजात गायक बन देता है। इस परम्परा को रैदास ने भी गति प्रदान की। उनके पद समाज के जड़ मानस पटल पर मीठी चोट करती। यह कहना उचित है कि उनके पदों में वैयक्तिकता के साथ संगीतात्मकता का विभिन्न रूप मिलता है, जिससे राग–रागनियों द्वारा पद सुशोभित होता है।

***हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी**

''प्रभु जी तुम चन्दन हम पानी
जाकी अंग–अंग बास समानी।''[3]

संतो के लिए संगीत उनके काव्याभिव्यक्ति का प्रिय साधन रहा है। दादूपंथी संत गरीबदास उन्हीं में स एक है। वे एक उच्चकोटि के साधक ही नहीं अपितु कुशल कवि, संगीतज्ञ और वीणाकार थे। इनकी वाणियों में ललित संगीत के दर्शन होते हैं।

मध्ययुगीन काल में संतों की बानी को आम जनता कण्ठस्थ करने लगी थीं। संत गुरूतेग बहादुर, संत हरिदास, मलूकदास, कीनाराम, गोरखनाथ, चरणदास, दयाबाई आदि ने गीति काव्य में अपनी रचनाएँ लगभग सभी प्रसिद्ध रागों में समृहित की। उसका प्रयोग वे स्वच्छन्द भाव से करते आए और इसमें सफल भी हुए। संतो की अनेक रचनाएं ऐसी है जो गीतिकाव्य के अन्तर्गत आती है। इन संतो का साहित्य और सामाजिक रूप दोनों अद्‌भूत और अद्वितीय है।

अन्य संतो की भाँति संत रविदास जी की रचनाएं पद्यात्मक रही है। जो दादूपंथी थे। वे एक उच्चकोटी के साधक ही नही अपितु कुशल कवि, संगीतज्ञ और वीणाकार थे। इनकी वाणियों में ललित संगीत के दर्शन होते है।

''तन खोजै तब पेावै रे
उल्टी चाल चले जे प्राणी
सो सहज घर आवै रे।''[4]

गुरू तेज बहादुर अपन भजनों के माध्यम से चुभती हुई चेतावनी देने में अत्यन्त प्रवीण थे। इनकी रचनाएं अन्य प्रायः सिख गुरूओं की बानियों में अत्यधिक लोकप्रिय है **''जगत मैं झूठी देखी प्रीति**
अपने ही सुख सिउ सम लागे
किआ दारा किया मीत।''[5]

इसी की भाँति कीनाराम अपनी वाणी में कहते हैं

''अनुभव सोई जानिये, जो नित रहै विचार
रामकिना सत शब्द गहि उतर जाय भौपार।''[6]

अन्तोगत्वा संतों के काव्यों में गीति का तत्व अत्यधिक मिलता है। सिर्फ पदों में ही नहीं अपितु सवैयों, अष्टकों, रेखतों आदि में संगीत का महत्वपूर्ण योगदान हैं। संतों ने संगीत के महत्व को न सिर्फ जाना बल्कि शास्त्रीय ढंग से अपना कर स्वच्छन्द रूप से प्रस्तुत किया।

सन्दर्भ सूची–

1. कबीर, सबद श्लोक– 135
2. गुरुनानक, सबद– 20
3. रैदास वाणी श्लोक–30
4. रैदास वाणी
5. गुरु तेग बहादुर, श्लोक–27
6. कीनाराम वाणी